THE TIMES OF INDIA

Date: 06-08-25

Angry Clouds & Rivers

Natural disasters visit Uttarakhand regularly. It excels in worsening their toll rashly

ET Editorials

No, it wasn't nearly as bad as 2013. But it was quite terrifying. The visuals of a swollen, angry river sweeping away scores of buildings as if they were bathtub toys, are still playing on repeat on TV. However frequent natural disasters may unfortunately be, sometimes the images set one apart. That's the case with yesterday's cloudburst in Uttarkashi. It led to flash floods in the high altitude villages of Dharali. This extreme weather event occurs in a small area and is rarely predicted by weather monitoring systems. IMD had given an "extremely heavy" rainfall warning for several districts in the state. But what we see in those terrifying visuals is how a cloudburst can wreak destruction in a mountainous region, gaining inordinate power through valleys and steep slopes, in a way impossible to control.

The other thing impossible to miss is how abundantly construction was sitting in the riverbed, as if with no sense of the river's nature and its rights of passage. In the moment that one gasped and feared that 2013 was being repeated, everything that happened then, from which the state was supposed to emerge chastened and reformed, streamed in one's mind. That June, the cloudburst sent such flash floods down Kedarnath to Rishikesh, that thousands of villages suffered and over 5,000 people went missing. There was hyper focus on how unregulated real estate development had exponentially worsened the toll that the natural disaster anyway would have taken. Nature has hardly stopped serving such warnings. The 2021 glacial lake outburst flood that tore into Chamoli and the 2023 subsidence in Joshimath were two biggies, for example.

But highrises to fancy villas keep going up in river beds. Builders make hay while people lose their lives and investments. Uttarakhand is crying for a govt that takes sustainable development seriously. It's never had one.

THE HINDU

Date: 06-08-25

Bullying tactics

India cannot allow the US. or the EU to decide its choice of trade partners

Editorials

After months of considerable forbearance, the statement by the Ministry of External Affairs (MEA), on Monday, pushing back against the U.S. and the European Union (EU) for "targeting" India is significant. The statement came two hours after Mr. Trump had announced penalty tariffs against India, "substantially" above the current 25% rate set to go into place this week, for importing, processing and selling Russian oil. A day earlier, a senior Trump aide had accused India of "financing" Russia's war in Ukraine. And on July 18, the EU had announced sanctions on India's Vadinar refinery (partially Russian owned), and secondary sanctions that will affect Indian refiners. The MEA spokesperson said that the measures were "unjustified and unreasonable" as the U.S. and the EU continue to trade with Russia for goods including LNG, criti- cal minerals and nuclear fuel requirements. The statement also said that it was the U.S. that had encouraged India to keep buying Russian oil to stabilise global markets, something the Biden administration had confirmed. The government said that in comparison to the western countries, India's Russian oil purchases are a "vital national compulsion" as a result of the conflict in Ukraine, adding that India would "... safeguard its national interests and economic security". The MEA's statement is the first such clear response on the issue since the Ukraine conflict. Taken with Union Minister Piyush Goyal's statement last week on the U.S. announcement of 25% reciprocal tariffs on India from August 7, Monday's statement indicates New Delhi's growing frustration with the U.S.'s increasingly offensive positions against India, including on immigration, trade negotiations, Operation Sindoor and Pakistan, and India's BRICS membership. It is unclear how and to what extent the government is prepared to stand up to the bullying tactics of Mr. Trump. Mr. Trump said on Tuesday that India has not been a "good trading partner" - a possible reference to trade talks and the failure of a mini-deal, ostensibly over India's resistance on agricultural market access, dairy products and GM foods.

While it is hoped that New Delhi will continue to engage Washington and Brussels to conclude their respective trade talks, the MEA statement is meant to make a larger point. Neither the U.S. nor the EU can decide which country India will partner or trade with. That message is being underlined in visits by Security Adviser Ajit Doval and External Affairs Minister S. Jaishankar to Moscow, to prepare for the Russian President's visit to India later this year. India's sovereignty is non-negotiable and its foreign policy choices cannot be manipulated by other countries, no matter how significant their own ties with India are.

दैनिक भास्कर

Date: 06-08-25

क्या स्थानीय निकाय ठीक से काम कर पा रहे हैं?

संपादकीय

जनता की सरकार शब्द सुनने में अच्छे लगते हैं। प्रजातंत्र के अस्तित्व का यह ध्येय वाक्य भी है। इसका एक और स्वरूप है स्थानीय स्व- शासन । संविधान के संशोधन 73 और 74 के जरिये 1992 में ग्रामीण क्षेत्र के लिए त्रि-स्तरीय पंचायत राज सिस्टम बना और शहरों, कस्बों के लिए स्व-शासित निकाय । नीति-निर्देशक तत्व के इस भाव को कानूनी जामा पहनाकर समझा गया कि अब व्यावहारिक प्रजातंत्र अपने अंतिम सोपान तक पहुंच गया। लेकिन समय पर चुनाव होने की व्यवस्था, निकायों और पंचायतों को धन और चुने प्रतिनिधियों को कतिपय अधिकार देकर हम भूल गए कि सामूहिक चेतना का दबाव तब पड़ता है, जब समूह जाति-उपजाति में न बंटा हो और अधिकारों को लेने की समझ व ललक सभी में समान हो। 33 साल से चल रहे इस सिस्टम में जन-चेतना के अभाव या विखंडित चेतना के कलुषित होने से वही विद्रूपता आने लगी, जो देश राष्ट्रीय स्तर पर झेल रहा था। मुखिया, सरपंच या ब्लॉक प्रमुख द्वारा विकास के पैसों में बंदरबांट की खबरें सामने आने लगीं। महिलाओं को आरक्षण दिया गया ताकि इनमें सशक्तीकरण का भाव आए, लेकिन इसके बजाय 'मुखिया पति ' नामक अनौपचारिक संस्था सिस्टम को भ्रष्ट करने लगी, क्योंकि गांवों में महिलाएं अशिक्षित थीं और दस्तावेजों को पढ़ना-समझना उनके वश से बाहर था। सामाजिक ढांचा भी सपोर्ट नहीं करता था। यानी जनता का शासन फिर विफल रहा। उपाय एक ही है- जनचेतना की गुणवत्ता बढ़ाना और उसे संकीर्ण सोच से ऊपर रखना ।

Date: 06-08-25

उनका क्या करें जो यह भी नहीं जानते कि वो नहीं जानते हैं?

डॉ. चन्द्रकांत लहारिया, (जाने माने चिकित्सक)

साल 1995 में अमेरिका के पिट्सबर्ग शहर में बन्दूक की नोक पर दिन-दहाड़े दो बैंक लूटे गए। खास बात यह थी कि दोनों ही घटनाओं में लुटेरों ने अपने चेहरे को ढका नहीं था, बल्कि वे कैमरे में अपना चेहरा दिखाकर मुस्करा रहे थे। बाद में जब दोनों पकड़े गए तो उन्होंने बताया कि उन्होंने अपने चेहरों पर नींबू के रस का लेप लगा रखा था। दोनों लुटेरों में से एक ने बचपन में नींबू के रस से कागज पर लिखने का खेल - जिसमें लिखे गए शब्द अदृश्य रहते हैं- खेला था। बचपन के उस अनुभव के आधार पर उसे लगा था कि जिस तरह नींबू का रस कागज पर शब्दों को अदृश्य कर देता हैं, उस दिन नींबू के लेप से उनके चेहरे भी सर्विलांस कैमरों में अदृश्य होने चाहिए थे !

दिन-दहाड़े इस तरह की बैंक लूट अमेरिका और कई देशों में एक बड़ी खबर थी। जब मिशिगन विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग के प्रोफेसर डेविड डनिंग ने यह पूरी घटना सुनी तो इस पर शोध करने का निर्णय लिया और अपने स्नातक छात्र जस्टिन क्रुगर को उस शोध में जोड़ा। 1999 में वे अपने शोधपत्र 'अनस्किल्ड एंड अनअवेयर ऑफ इट' में इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि जब किसी विषय या विशेष क्षेत्र में लोगों का ज्ञान या क्षमता सीमित या कम होती है तो वे अपनी क्षमताओं को अधिक आंकने या उसे अच्छे से समझने की भूल में रहते हैं। यह कॉग्निटिव बायस या एक प्रकार का संज्ञानात्मक पूर्वग्रह है, जिसे अब 'डनिंग क्रुगर प्रभाव' के नाम से जाना जाता है।

अपने दैनिक जीवन में हम अक्सर ऐसे लोगों से मिलते हैं, जिनके पास कुछ विशेष क्षेत्रों के बारे में सीमित ज्ञान होता है या बिलकुल भी ज्ञान नहीं होता, फिर भी वे उस बारे में आत्मविश्वास से भरे होते हैं और उन पर विस्तार से बात कर सकते हैं। जर्मन-अमेरिकी लेखक चार्ल्स बुकोवस्की ने इसे बहुत अच्छे से वर्णित किया है कि दुनिया की समस्या यह है कि बुद्धिमान लोग हमेशा संदेह से भरे रहते हैं, जबकि मूर्ख आत्मविश्वास से।

महात्मा गांधी जब जनवरी 1915 को दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे तो वे करीब 22 साल देश से बाहर रहकर आ रहे थे। गोपाल कृष्ण गोखले ने उन्हें सलाह दी कि किसी भी राजनीतिक गतिविधि में शामिल होने से पहले देशभर में एक साल यात्रा करके देश और उसके लोगों को समझें । गांधी ने यही किया भी। इसमें कोई संदेह नहीं है कि किसी भी चीज की अच्छी समझ विकसित करने से पहले समय, प्रयास, समर्पण और संसाधनों की आवश्यकता होती है। जब रामायण में राम और लक्ष्मण को शिक्षा प्राप्त करने के लिए गुरुकुल भेजा गया था, तब भी यही विचार रहा होगा। भारतीय दर्शन में इस बात का काफी उल्लेख है कि बिना प्रयास के प्राप्त की गई वस्तु अच्छी नहीं होती।

लेकिन अब समय बदलता नजर आ रहा है। इंस्टेंट कॉफी या नूडल्स का तो पहले भी समय था, लेकिन हम एआई और चैटजीपीटी के युग में प्रवेश कर चुके हैं। ऐसे में हर कोई बिना मेहनत और कोशिशों के हर विषय का ज्ञानी बनता नजर आ रहा है। आपने भी अकसर देखा होगा कि लोग जिस विषय को गहराई से नहीं समझते हैं, चर्चाओं में उसी पर सबसे ज्यादा बोलते हैं। इस चुनौती का एक चिंताजनक प्रभाव अकादमिक और विश्वविद्यालयीन शिक्षा और शोध पर भी पड़ रहा है। साइंटिफिक जर्नल में छपे शोधपत्रों को करियर ग्रोथ के लिए जरूरी कर दिया गया है। गुणवत्ता के बजाय संख्या पर बहुत ध्यान दिया जाता जिसका परिणाम प्रकाशन के लिए होड़ में होता है। नतीजा है जर्नलों में चैटजीपीटी -जनरेटेड या चुराए हुए कंटेंट वाले लेख छपने लगे हैं। भारत के एक निजी विश्वविद्यालय ने वैज्ञानिक शोधपत्रों को वापस लेने के लिए दुनिया में नंबर 1 होने का श्रेय पाया है।

एआई उपयोगी जरूर साबित होगा, लेकिन हर क्षेत्र में नहीं। जब बात ज्ञान की आती है तो इसमें कोई भी शॉर्टकट नहीं है। जो सच में ही सीखना चाहते हैं, वो तो ज्ञान अर्जित करने के रास्ते निकाल लेते हैं, लेकिन उनका क्या किया जाए जो यह भी नहीं जानते कि वो नहीं जानते हैं? इसके लिए सामाजिक स्तर पर चिंतन, मनन और

मीमांसा करनी होगी। लेकिन सबसे पहले हमें व्यक्तिगत स्तर पर - सीखने, कम बोलने या उसी के बारे में बोलने, जिसे हम अच्छे-से जानते-समझते हैं, की आदत डालनी होगी।

दैनिक जागरण

Date: 06-08-25

सुनिश्चित हो संवैधानिक दायित्व की पूर्ति

हृदयनारायण दीक्षित, (लेखक उत्तर प्रदेश विधानसभा के पूर्व अध्यक्ष हैं)

हाल में सर्वोच्च न्यायालय ने दलबदल की याचिकाओं के निस्तारण पर गंभीर टिप्पणी करते हुए कहा कि विधायी सदनों के अध्यक्षों / सभापतियों के निर्णय में विलंब से चिंताजनक स्थिति निर्मित हुई है। प्रधान न्यायाधीश बीआर गवई के नेतृत्व बाली बेंच ने कहा, 'हम ऐसी स्थिति की अनुमति नहीं दे सकते जहां आपरेशन सफल हो, लेकिन मरीज ही मर जाए।' याचिकाओं पर निर्णय में ऐसा विलंब न हो कि सदन का कार्यकाल ही समाप्त हो जाए। न्यायपीठ ने तेलंगाना विधानसभा में भारत राष्ट्र समिति के 10 विधायकों के दलबदल मामले में सुनवाई के बाद कहा कि संविधान की दसवीं अनुसूची के तहत दी गई याचिकाओं पर विधानसभा अध्यक्ष तीन महीने के भीतर निर्णय दें। न्यायालय ने पहले भी कहा था कि याचिकाओं के निर्णय में विलंब से 10वीं अनुसूची के उद्देश्य विफल हो सकते हैं। सदन के अध्यक्ष / सभापतियों को ही ऐसी याचिकाओं की सुनवाई का अधिकार है। कोर्ट ने यह भी कहा कि उसे सुनवाई की समयसीमा सुनिश्चित करने का अधिकार है। ये बातें मणिपुर विधानसभा सहित कई मामलों में समयसीमा निर्धारित करने की मांग पर कही गई हैं। एक मामले (1992) में सर्वोच्च न्यायापीठ ने कहा था कि आवश्यक कार्यवाही में देरी पर न्यायालय को हस्तक्षेप का अधिकार है। रवि एस. नायक बनाम भारत संघ मामले (1994) में अध्यक्ष की निष्पक्षता पर भी टिप्पणी की गई थी।

निर्वाचित जनप्रतिनिधि ही सरकार में मंत्री और सदन में पीठासीन अधिकारी बनते हैं। राजनीतिक दल उनके निर्वाचन में सक्रिय भूमिका निभाते हैं। वे चुनाव जीतकर अपने दल के प्रति निष्ठावान रहते हैं, पर तमाम प्रतिनिधि लोभवश दलबदल करते हैं। स्वतंत्रता के कुछ समय बाद ही दलबदल का सिलसिला चल निकला था । 1967 में हरियाणा के एक नेता ने एक दिन में ही तीन बार दलबदल किया था । कई राज्यों में दलबदलू नेता दल छोड़ते ही मंत्री बने। नैतिक और विधिक दृष्टि से यह अपराध है। मतदाता के प्रति धोखाधड़ी भी है। हमारे यहां राष्ट्र जीवन के सभी क्षेत्रों में उन्नति हुई है, लेकिन हम संवैधानिक नैतिकता वाले दल नहीं बना पाए। राजनीतिक दल भी अपने सदस्यों में निष्ठा नहीं ला पाते, कुछ दलबदल कराते हैं और कुछ दलबदल करते हैं।

कहा जाता है कि राजीव गांधी ने भयवश 52वां संविधान संशोधन पारित करवाया था । तब स्वेच्छा से दल त्याग दंडनीय माना गया, पर एक तिहाई सदस्यों के दल त्याग को विलय कहा गया था । एक तिहाई सदस्य जुटाना मुश्किल नहीं था। कुछ राज्यों में इक्का-दुक्का सदस्य आते रहे और एक तिहाई होते गए। दलबदल के तमाम तरीके ईजाद होते रहे। 1991 में संविधान संशोधन द्वारा एक तिहाई की जगह दो तिहाई सदस्यों का प्रविधान किया गया। इसका भी बहुत लाभ नहीं हुआ। सदस्यता छीन लेने जैसे सख्त कानून के बावजूद दलबदल जारी हैं। एक कारण पीठसीनों की ढिलाई भी हैं। इसलिए हाल के तेलंगाना मामले सहित कई अवसरों पर पीठासीन अधिकारियों पर टिप्पणियां हुई हैं। आरोप लगते रहे हैं कि वे जानबूझकर पक्षपात करते हैं। यचिकाएं ठंडे बस्ते में डाल देते हैं। चुनाव आयोग ने सुझाव दिया था कि इस गंभीर विषय पर विमर्श के लिए एक आयोग बने। सर्वोच्च न्यायालय ने भी कहा है कि निष्पक्षता के लिए न्यायपालिका के रिटायर्ड जज की अध्यक्षता में न्यायाधिकरण का गठन किया जाना चाहिए। सदनों के सभापति/अध्यक्ष सम्माननीय संवैधानिक संस्था हैं। 10वीं अनुसूची में संविधान ने इन्हें उत्तरदायी माना है। इन संस्थाओं को अपने संवैधानिक कर्तव्य का सही पालन करना चाहिए, मगर दल त्यागने का रोग इतने भर से दूर नहीं होगा। माननीय विशेष अवसरों के लिए दल त्याग करेंगे। कुछ दंडित होंगे, होते भी हैं और शेष तकनीकी कारणों से बच निकलेंगे। इसलिए इस मुद्दे पर व्यापक विमर्श हो ।

जहां स्वेच्छा से दल त्याग दंडनीय है, वहीं किसी व्यक्ति या समूह द्वारा दल त्याग की घोषणा सुविचारित भी हो सकती हैं। पार्टी का नेतृत्व विचारधारा बदल सकता है। विचारनिष्ठ सदस्यों के लिए यह अस्वीकार्य हो जाता है। वे सदन में अपने नेताओं के विरुद्ध भी बोलते हैं। संविधान में विचार अभिव्यक्ति मौलिक अधिकार है। दलीय अनुशासन का डंडा सदस्यों को अखरता है। दलबदल रोकने से राजनीतिक स्थिरता तो रहती है, किंतु निर्वाचित सदस्यों को विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से वंचित भी नहीं किया जा सकता। बजट और अविश्वास प्रस्ताव जैसे अवसरों पर सदस्यों को दलीय अनुशासन चाहिए। इसके अतिरिक्त उन्हें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता चाहिए। दलबदल के कानूनी प्रविधानों ने सदस्यों की विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को सीमित किया हैं, जबकि संविधान सदनों में विचार अभिव्यक्ति की असीम स्वतंत्रता देता है। संसदीय जनतंत्र में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता अनिवार्य हैं। इसके बावजूद दलबदल के विरुद्ध अभियान चलाते रहना चाहिए। समाज इसकी निंदा करे। राज्य दंड दे ।

आखिर ब्रिटिश संसद ने भारत जैसा दलबदल कानून क्यों नहीं बनाया? ब्रिटेन का दल तंत्र ऐसी समस्याएं स्वयं सुलझा लेता है। ब्रिटेन जैसी संसदीय प्रणाली अपना कर भी, दलबदल कानून के बावजूद भारत क्यों इस समस्या से ग्रस्त बना हुआ है। ब्रिटेन में पार्टी बदलने पर कोई कार्रवाई नहीं होती। अमेरिका में भी दलबदल कानून नहीं है। अमेरिका में दो दल हैं। दलबदल भी होते हैं। एक समय डेमोक्रेटिक पार्टी के 16 प्रतिनिधि रिपब्लिकन पार्टी में शामिल हो गए थे। पार्टी का अनुशासन अमेरिका में ऐसी समस्याएं सुलझा लेता है। यूरोप के देशों में सख्त कानून है। दल त्याग पर संसद की सदस्यता समाप्त हो जाती है। बांग्लादेश में भी पार्टी के विरुद्ध सदन में मतदान करने और पार्टी बदलने पर त्यागपत्र लिया जाता है। केन्या, दक्षिण अफ्रीका आदि में दलबदल की छूट

नहीं है। भारत का मन बदल रहा है। सारी दुनिया आश्चर्यचकित है। संपूर्ण राजनीतिक दल तंत्र और विधायिका के सभी सदस्यों को संवैधानिक दायित्वों के निर्वहन के लिए संवेदनशील होना चाहिए। न्यायपीठ का निर्णय स्वागतयोग्य हैं। इससे विधायिका और न्यायपालिका की गरिमा बढ़ेगी।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 06-08-25

राज्यों की वित्तीय सेहत

संपादकीय

क्रिसिल की एक हालिया रिपोर्ट दिखाती है कि भारत के 18 सबसे बड़े राज्य जो मिलकर देश के सकल राज्य घरेलू उत्पाद यानी जीएसडीपी में 90 फीसदी से अधिक का योगदान करते हैं, उनका राजस्व 2025-26 में 7 से 9 फीसदी तक बढ़ने की उम्मीद है। 2024-25 में यह महज बढ़त 6.6 फीसदी थी। कुल समेकित राजस्व के 40 लाख करोड़ रुपये हो जाने का अनुमान है। इसमें वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) संग्रह, शराब पर यानी आबकारी शुल्क में इजाफे और बेहतर केंद्रीय हस्तांतरण की अहम भूमिका है। पेट्रोलियम कर संग्रह जरूर 2 फीसदी की वृद्धि के साथ कमजोर बना हुआ है।

यह स्पष्ट रूप से राज्यों की वित्तीय हालत में स्थिरता का संकेत है। यह स्थिरता ऐसे समय में नजर आ रही है जबकि वैश्विक हालात चुनौतीपूर्ण बने हुए हैं और घरेलू आर्थिक हालात भी वैसे ही हैं। यह पूंजीगत आवंटन में तेज वृद्धि की स्थितियां निर्मित करता है। हालांकि यह गहन ढांचागत मुद्दों की ओर भी ध्यान आकर्षित करता है। राजस्व वृद्धि दशक के 10 फीसदी के औसत से कम बनी हुई है और अधिकांश राज्य बहुत हद तक केंद्र से होने वाले हस्तांतरण पर निर्भर हैं। 2015-16 से 2024-25 तक राज्यों के राजस्व का 23 से 30 फीसदी तक हिस्सा केंद्र के हस्तांतरण से आया। 2000 और 2010 के दशक में वह 20 से 24 फीसदी के बीच हुआ करता था। इसके साथ ही गत दशक में राज्यों के गैर कर राजस्व में केंद्र सरकार के अनुदान 65 से 70 फीसदी के हिस्सेदार रहे जबकि पहले इनका योगदान 55 से 65 फीसदी तक होता था। यह दीर्घकालिक रुझान इस बात को रेखांकित करता है कि कैसे केंद्र की भूमिका बढ़ रही है। और राज्यों के पास अपनी वित्तीय हालत सुधारने के स्वतंत्र उपाय सीमित हो रहे हैं। पीआरएस लेजिस्लेटिव रिसर्च की रिपोर्ट भी दिखाती है कि 2024-25 में राज्यों द्वारा अपनी राजस्व प्राप्तियों का 58 फीसदी हिस्सा अपने कर और गैर कर स्रोतों से हासिल किया गया जबकि 42 फीसदी राजस्व केंद्रीय करों में हिस्सेदारी और केंद्र के अनुदान से हासिल होने का अनुमान है।

भारकीय रिजर्व बैंक ने 2023-24 में राज्यों की वित्तीय स्थिति को लेकर जो रिपोर्ट पेश की थी उसमें कहा गया था कि राज्य सरकारों का समेकित ऋण जीडीपी अनुपात 28.5 फीसदी है जो वित्तीय जवाबदेही और बजट प्रबंधन समीक्षा समिति द्वारा तय 20 फीसदी की सीमा से अधिक था। आंकड़े बताते हैं कि 12 राज्यों का ऋण - जीएसडीपी अनुपात 2023-24 में 35 फीसदी का स्तर पार कर गया जबकि करीब 24 राज्यों का अनुपात 20 फीसदी से अधिक था। बहरहाल कुछ को छोड़कर अधिकांश राज्यों का प्रदर्शन केंद्र से बेहतर रहा है। कई राज्यों ने बजट पारदर्शिता में सुधार किया है, सामाजिक क्षेत्र में अपन क्षमताएं बेहतर की हैं और पूंजीगत व्यय को प्राथमिकता दी है वास्तव में अधिकांश राज्यों ने काफी हद तक राजकोषीय समझदारी दिखाई है। उन्होंने मोटे तौर पर एफआरबीएम के मानकों का पालन किया और अपने राजकोषीय घाटे को जीएसडीपी के 3 फीसदी तक सीमित रखा। राज्यों का समेकित सकल राजकोषीय घाटा 1998-99 के जीडीपी के औसतन 4.3 फीसदी से कम होकर 2004-05 से 2023-24 के बीच जीडीपी का 2.7 फीसदी रह गया।

बहरहाल, राज्य सरकारों की वित्तीय स्थिति को मजबूत बनाने की आवश्यकता है। जीएसटी अनुपालन में सुधार को तत्काल प्राथमिकता देने की आवश्यकता है। राज्यों को डिजिटल राजस्व निगरानी का विस्तार करना चाहिए और संपत्ति कर तथा उपयोगकर्ता शुल्क आदि में आने वाली खामियों को दूर करना चाहिए। इसके साथ ही केंद्र सरकार को यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि हस्तांतरण समय पर और अनुमानित ढंग से हो, खासतौर पर वित आयोग द्वारा अनुशंसित अनुदान जो राजस्व वृद्धि और व्यय में असमानता की समस्या दूर करने में मदद करते हैं राज्यों और केंद्र सरकार के बीच केंद्र द्वारा उपकर और अधिभार के इस्तेमाल को लेकर भी काफी मतभेद हैं। उपकर और अधिभार पर अधिक निर्भरता राज्यों और केंद्र के बीच राजकोषीय संतुलन को खराब करता है। इससे बचने की आवश्यकता है।

Date: 06-08-25

विकसित भारत और शून्य उत्सर्जन का लंबा रास्ता

अजय त्यागी, (लेखक ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन में विशिष्ट फेलो हैं और सेबी चेयरमैन रह चुके हैं।)

आकांक्षाएं जब पक्के इरादों से जुड़ी होती हैं तब किसी भी व्यक्ति, कंपनी या देश को आगे बढ़ने और तरक्की करने के लिए प्रेरित करती हैं। कोई भी बड़ी कंपनी अपने लक्ष्यों और उद्देश्यों से जुड़े दस्तावेजों में अपनी आकांक्षाएं दिखाती है। अगर देशों की बात करें तो उनकी कई आकांक्षाएं अलग-अलग सरकारी दस्तावेजों में अंतर्निहित होती हैं जिनमें से कुछ मुख्य बातें उनके संविधान में ही शामिल होती हैं इसके

अलावा समय-समय पर देश का राजनीतिक नेतृत्व अपनी विचारधारा तात्कालिक जरूरत और अन्य प्रतिब द्धताओं के हिसाब से कुछ बड़े लक्ष्य तय करता है।

यह लेख भारत के मौजूदा राजनीतिक नेतृत्व द्वारा घोषित किए गए दो सबसे महत्त्वाकांक्षी दीर्घकालिक लक्ष्यों के बारे में है ये दो लक्ष्य हैं, वर्ष 2047 तक 'विकसित भारत' बनाना और वर्ष 2070 तक ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन शुद्ध शून्य करना। इन दोनों लक्ष्यों को हासिल करने के रास्ते कई मायने में एक-दूसरे से जुड़े हैं और इसके लिए एक सामंजस्यपूर्ण दृष्टिकोण आवश्यक है ताकि हम मंजिल तक पहुंच सकें। सवाल यह है कि क्या हमें इसको लेकर पर्याप्त स्पष्टता है कि वास्तव में क्या हासिल करने का लक्ष्य है और इसे कैसे हासिल किया जाएगा ?

आइए सबसे पहले 'विकसित भारत 2047' के लक्ष्य को समझते हैं। 'विकास' शब्द थोड़ा अस्पष्ट है और अलग-अलग लोगों के लिए इसके अलग मायने हो सकते हैं। सवाल यह है कि असल में हम क्या हासिल करना चाहते हैं? सामान्य तौर पर जो जानकारी उपलब्ध है, उसके मुताबिक इस लक्ष्य के तहत भारत, निम्न मध्यम आय वाले देशों की सूची से निकलकर विश्व बैंक के अनुसार अपनी प्रति व्यक्ति आय को निम्न मध्यम से उच्च मध्यम स्तर तक ले जा सकता है।

निश्चित रूप से इसका लक्ष्य तय होना चाहिए लेकिन क्या यह पर्याप्त है? अन्य मापदंडों का क्या होगा जिनमें सामाजिक और पर्यावरणीय स्थितियों को बेहतर बनाने वाले मापदंड भी शामिल हैं, मसलन मानव विकास सूचकांक रैंकिंग, आय की असमानता कम करना, शहरों सहित बुनियादी ढांचे में सुधार और पर्यावरणीय क्षति को रोकना आदि? क्या इन सभी बातों पर विचार करके किसी सही निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए पर्याप्त सार्वजनिक चर्चा की गई है ?

सरकार को स्पष्ट तौर पर 'विकसित भारत के लक्ष्य के तहत आने वाले सभी वांछित मापदंडों की एक सूची बनाने की जरूरत है जिसमें हर पहलू को पर्याप्त महत्त्व दिया जाए और जहां संभव हो वहां संख्यात्मक लक्ष्य भी तय हों। जब इन बातों पर स्पष्टता होगी तभी अलग-अलग क्षेत्रों से जुड़ी सही नीतियां और रोडमैप बन पाएंगे। शुद्ध शून्य उत्सर्जन की बात करें तो संयुक्त राष्ट्र इसे कुछ इस तरह परिभाषित करता है, 'कार्बन उत्सर्जन में इतनी कटौती करना कि बचे हुए उत्सर्जन को प्राकृतिक तरीके और कार्बन डाइऑक्साइड हटाने के अन्य उपायों द्वारा अवशोषित किया जाए और प्रकृति को सतत तरीके से संभाल सकने लायक रखा जा सके ताकि वायुमंडल में शून्य उत्सर्जन रह जाए।'

सबसे अधिक आशावादी लोग भी इस बात पर सहमत होंगे कि भारत के लिए 2070 तक 'शून्य उत्सर्जन' दर हासिल करना एक बड़ी और मुश्किल चुनौती है। फिलहाल, भारत दुनिया में तीसरा सबसे बड़ा ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जक है। अधिकतर विकसित देशों में ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन कुछ समय पहले ही चरम पर पहुंच गया था। ख़बरों के अनुसार, चीन में भी यह हाल ही में चरम पर पहुंचा है या इस साल पहुंच जाएगा। भारत की कहानी

बिल्कुल अलग है। हमारी विकास की बड़ी जरूरतों को देखते हुए, जीवाश्म ईंधन पर निर्भरता और मानवीय गतिविधियों के चलते होने वाले पर्यावरणीय बदलाव के स्तर को देखते हुए, यहां निकट भविष्य में उत्सर्जन चरम पर पहुंचने की संभावना नहीं है। वर्ष 2047 तक 'विकसित भारत' के रोडमैप और इसके मॉडल को वास्तव में पर्यावरणीय बाधाओं को ध्यान में रखना ही होगा, जिससे यह लक्ष्य और भी चुनौतीपूर्ण हो जाएगा।

वर्ष 2047 और 2070 काफी दूर हैं और इन लक्ष्यों से ध्यान भटकना कोई मुश्किल बात नहीं है। जैसा कि कीन्स की यह उक्ति बेहद चर्चित है, ... लंबे समय में हम सब मर जाएंगे।' इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि अब से 2047 और 2070 के बीच कई अलग-अलग सरकारें होंगी। मौजूदा सरकार को चाहिए कि वह इन लक्ष्यों में शामिल किए जाने वाले सभी मापदंडों पर सभी राजनीतिक दलों के बीच एक राष्ट्रीय स्तर की सहमति बनाए और आगे बढ़ने की राह क्या हो उसकी रूपरेखा ठीक से दस्तावेज के रूप में तैयार की जाए। अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने में गंभीरता दिखाने के लिए, सरकार को व्यावहारिक और भरोसेमंद योजनाएं बनानी होंगी, जो जनता के सामने उपलब्ध होना चाहिए। यह इसलिए भी जरूरी है ताकि जरूरत पड़ने पर सुधारात्मक कदम उठाए जा सकें।

'विकास' शब्द भले ही थोड़ा अस्पष्ट हो, लेकिन अच्छी बात यह है कि ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को शायद स्कोप 3 उत्सर्जन और कार्बन सोखने की क्षमता को छोड़कर, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार किए गए मानदंडों और सही अनुमानों का उपयोग कर मापा जा सकता है। उत्सर्जन के स्तर की जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन (यूएनएफ- सीसीसी) पार्टियों के सम्मेलन (कॉप) की बैठकों में भी निगरानी की जाती है जहां विभिन्न देश समय-समय पर राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित योगदान (एनडीसी) के रूप में कमी लाने की प्रतिबद्धताएं जताते हैं।

उदाहरण के तौर पर फिलहाल भारत ने 2030 तक अपनी सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) की उत्सर्जन तीव्रता को 2005 के स्तर से 45 फीसदी तक कम करने की प्रतिबद्धता जताई है। कई विशेषज्ञों का मानना है कि यह लक्ष्य समयसीमा से पहले ही आसानी से हासिल किया जा सकता है। अगर ऐसा है, तो 2070 तक शुद्ध शून्य उत्सर्जन के अपने अंतिम लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, एनडीसी प्रतिबद्धता से आगे बढ़कर, अपने लिए ऊंचे लक्ष्य क्यों न निर्धारित किए जाएं ?

सवाल यह भी है कि ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन को मध्यम से लंबी अवधि में कम करने के लिए सरकार की वास्तविक कार्य योजना क्या है? इसमें से कितना कार्बन मूल्य निर्धारण तंत्र के माध्यम से हासिल किया जाएगा जैसे कि कार्बन कर और विभिन्न बाध्यकारी संस्थाओं के लिए ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन लक्ष्य तय करना, खासतौर पर एक मजबूत कार्बन क्रेडिट ट्रेडिंग तंत्र के साथ उन क्षेत्रों के लिए जहां इसमें कटौती करना मुश्किल है?

अनिवार्य आदेश के माध्यम से कितना लक्ष्य हासिल होने का अनुमान है, जो कार्बन मूल्य निर्धारण सिद्धांत द्वारा स्पष्ट रूप से निर्देशित हो भी सकते हैं और नहीं भी जैसे कि जीवाश्म ईंधन की जगह अक्षय ऊर्जा का उपयोग, ऊर्जा दक्षता में सुधार, इलेक्ट्रिक वाहनों के उपयोग को प्रोत्साहन देना, कृषि पद्धतियों में सुधार, वनरोपण को बढ़ाना, कार्बन पृथक्करण और इसी तरह के अन्य उपाय ? इन मामलों पर एक तर्कसंगत दृष्टिकोण अपनाने के लिए व्यापक स्तर पर सभी हितधारकों के साथ परामर्श करना, गहन डेटा विश्लेषण करना, तकनीकी उपकरणों का उपयोग करना और विशेषज्ञों की सलाह की आवश्यकता है।

आप वर्ष 2047 और 2070 की अवधि को पांच साल (अल्पकालिक) और 10 साल (मध्यम अवधि) के खंडों में विभाजित करें और दोनों लक्ष्यों के लिए सहमत मापदंडों के तहत, वास्तविक उपलब्धियों की तुलना लक्ष्यों से किसी तीसरे पक्ष (निगरानी, रिपोर्टिंग और सत्यापन) के विशेषज्ञों द्वारा समय-समय पर की जानी चाहिए, जिसकी रिपोर्ट सार्वजनिक की जाए।

वर्ष 2047 तक विकसित भारत' और 2070 तक 'शून्य उत्सर्जन' की महत्त्वा कांक्षाएं वास्तव में वांछनीय लक्ष्य हैं और ये इस वक्त की जरूरत भी है। वास्तव में सबसे मुश्किल हिस्सा रोडमैप के बारे में स्पष्टता कायम करना है।

Date: 06-08-25

मध्य वर्ग की बदलती प्रकृति को समझना जरूरी

रमा बीजापुरकर, (लेखिका ग्राहक-आधारित कारोबारी रणनीति क्षेत्र में व्यवसाय सलाहकार हैं।)

अर्थशास्त्री सुबीर गोकर्ण (अब दिवंगत) ने 2007 के आसपास इस अखबार में मिडल क्लास ओरिजिन्स' (मध्य वर्ग की उत्पत्ति) शीर्षक से एक ऐतिहासिक लेख लिखा था। उसमें कही गई बातें आज लगभग 20 साल बाद और भी ज्यादा प्रासंगिक हैं। मध्य वर्ग की उत्पत्ति अथवा वह प्रक्रिया जिससे यह वर्ग उभरा, बहुत मायने रखती है। इस वर्ग के बारे में हम जैसा सोचते हैं और उसके व्यवहार एवं दृष्टिकोण के प्रति हमारी जो धारणा है, उसमें इसकी संघर्ष यात्रा को भी ध्यान में रखना चाहिए।

यह मानना बिल्कुल गलत होगा कि आने वाले समय में मध्य वर्ग का व्यवहार खर्च और बचत (इससे आगे उसकी तार्किकता की बात करें तो, राष्ट्र, राजनीति एवं सामाजिक कर्तव्यों पर वैश्विक दृष्टिकोण) के मामले में मौजूदा मध्य वर्ग जैसा ही होगा। समकालीन मध्य वर्ग सार्वजनिक क्षेत्र के रोजगार से बना था। सरकारी नौकरियों ने उस वक्त उच्च और निम्न दोनों स्तरों पर स्थायी रोजगार पैदा किया था। इसमें स्वास्थ्य सेवा और पेंशन, कम ब्याज वाले ऋण (इसमें नियमित वेतन वृद्धि भी जोड़ी जा सकती है) आदि कुछ ऐसी विशेषताएं थीं जो

सुरक्षा एवं भविष्य में आय के प्रति निश्चिंतता का आभास देती थीं। इन्हीं चीजों ने मध्य वर्ग के व्यवहार और दृष्टिकोण को आकार दिया था। फिर, 1990 के दशक से यह स्थायी सरकारी रोजगार के स्रोत कम होते गए। औपचारिक निजी क्षेत्र भी पर्याप्त रोजगार नहीं दे पा रहा है। गोकर्ण ने महसूस किया कि इस बदलते परिदृश्य में सबसे अधिक प्रभावित सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में निचले स्तर के कर्मचारी हैं।

उन्होंने यह भी माना कि भविष्य का मध्य वर्ग पहले की तरह एक समान नहीं होगा, क्योंकि अब इसके लिए रोजगार का कोई एकल स्रोत, कोई एक मजबूत पोषक या निर्माता नहीं है। आज इस वर्ग का दायरा फैल रहा है, लेकिन अधिकांश के पास पहले जैसी आय की स्थिरता और निश्चिंतता, नौकरी की सुरक्षा या जीवन के बुनियादी स्वास्थ्य संबंधी पहलुओं का ध्यान रखने जैसी ऐतिहासिक विशेषताएं नहीं हैं। आय के आधार पर आकार लेने वाला मध्यम वर्ग स्वतः निरंतर आर्थिक प्रगति नहीं कर पाएगा, क्योंकि दोनों को जोड़ने वाले कारक अलग-अलग हैं।

जैसा कि इस कॉलम में अक्सर बताया गया है, हमें सिर्फ आय पर आधारित मध्य वर्ग की गणना की वास्तविकता की जांच करनी होगी। इसमें आय की स्थिरता और पूर्वानुमान के उन आयामों को शामिल करना होगा जो कौशल, कार्य-पद्धति और ऐसे व्यवसाय से आते हैं जो अस्थिर समय में लचीलापन प्रदान करते हैं। इसके अलावा, यह भी देखना होगा कि मौजूदा समय में देखभाल और भविष्य की सुरक्षा एवं अगली पीढ़ी की सामाजिक गतिशीलता बनाए रखने के उद्देश्य से तमाम खर्चों के बाद भी उसके पास निवेश करने के लिए कम से कम 30 फीसदी बचत हो। यदि फिलहाल हम इस संख्या को बनाए रखना चाहते हैं और मौजूदा क्रय शक्ति के आइने से मध्यम वर्ग की परिभाषा देखते हैं तो हमें उन क्षेत्रों के बारे में सोचना होगा जिनसे ये अलग-अलग तरह के आय स्रोत बने हैं, ताकि यह समझा जा सके कि उपभोक्ता मतदता, करदाता या नागरिक के रूप में यह मध्य वर्ग कैसे व्यवहार करेगा।

सरकारी कर्मचारियों और बड़ी निजी कंपनियों में औपचारिक नौकरी करने वाले लोगों का एक सेगमेंट ऐसा है जिसमें अभी भी पहले वाले मध्य वर्ग की निशानियां बाकी हैं। लेकिन व्यवसाय के आंकड़ों के आधार पर पता चलता है कि पहले से ही छोटे इस वर्ग की भविष्य के बढ़ते मध्य वर्ग में हिस्सेदारी घटती जा रही है। इस मध्य वर्ग का अधिकांश हिस्सा अर्ध औपचारिक या अर्थ अनौपचारिक छोटी निजी कंपनियों में रोजगार, सीमित व्यावसायिक क्षमता और पर्यावरणीय चक्रों का सामना करने की क्षमता वाले छोटे उद्यमी, और अलग-अलग कौशल स्तर और कम स्थिरता वाले स्व-नियोजित गिग कर्मचारी के रूप में होगा।

निम्न मध्य आय वर्ग जिसमें बहुत से कॉलेज जाने वाले वाले पहली पीढ़ी के युवा है, पर किया गया हमारा अध्ययन संकेत देता है कि भविष्य का मध्य वर्ग कैसा होगा (मेरे पिछले स्तंभों में इस अध्ययन का विस्तार से उल्लेख किया गया था)।

वे सार्थक काम खोजने और सामाजिक-आर्थिक सीढ़ी पर आगे बढ़ने के लिए जरूरी ऊर्जा जुटाने में थक चुके हैं, क्योंकि उनके पास कोई सुविधाजनक ढांचा नहीं है। वे दफ्तर वाली नौकरियों जैसा सम्मान, स्थिरता, सुरक्षा, पूर्वानुमान, सामाजिक गतिशीलता, मान्यता (जो पुराने मध्य वर्ग के पास थी) की तलाश में हैं।

विडंबना यह है कि उनकी चाहत सरकारी नौकरी ही है। उनकी तीव्र इच्छा यही है कि वे ऐसा जीवन जिएं (कम आकांक्षा स्तर, छोटे सपने), जिसमें संघर्ष और अनिश्चितता कम से कम हो क्या भारत का प्रसिद्ध आकांक्षी मध्य वर्ग भविष्य में एक थके हुए मध्य वर्ग के लिए रास्ता तैयार कर रहा है?

मध्य वर्ग में हम जिस स्थिरता और समरूपता की कल्पना करते हैं, वह वास्तव में विविधता का एक समूह है और इसमें अंतर्निहित आय और व्यवसाय की परिव- र्तनशीलता जैसे गुण हैं साहित्य में कहा जाता है कि कम सामाजिक विविधता (अधिक समरूपता) मध्य वर्ग की सक्रियता को दर्शाती है, क्योंकि वे अपनी ताकत का इस्तेमाल करने के लिए एक समूह के रूप में कार्य करते हैं। भविष्य का मध्य वर्ग न केवल कम समरूप होगा बल्कि अधिक संकीर्ण भी होगा, जो अपने पूर्ववर्ती को उपलब्ध सार्वजनिक क्षेत्र स्थानांतरणीय नौकरियों के अखिल भारतीय जीवन के अनुभवों से वंचित होगा।

हमें शायद एकल मध्य वर्ग की अपनी वैचारिक संरचना को दो स्तरीय संरचना में बदलना होगा एक आर्थिक विकास संचालित वास्तविक मध्य वर्ग, जिसमें पूर्व में बताई गई कई विशेषताएं हों; और दूसरा वर्तमान में क्रय शक्ति रखने वाला खपत करने में सक्षम वर्ग मध्य वर्ग के विकास और आर्थिक व सामाजिक विकास को गति देने में उसके योगदान के बीच का संबंध अलग-अलग समूहों के लिए अलग-अलग होगा, जैसे कि उनके खर्च और बचत के विकल्प, नीतिगत आधार और चुनावी मूल्य प्रस्ताव भी अलग- अलग होंगे। शायद गोकर्ण का यही मतलब रहा हो जब उन्होंने कहा था कि एक उपयोगी चक्र सुनिश्चित करने के लिए हमें इस वर्ग की बदलती प्रकृति को पहचानने और उसी हिसाब से काम करने की जरूरत है।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 06-08-25

सीमाओं का संज्ञान

संपादकीय

लोक सभा में विपक्ष के नेता राहुल गांधी को सर्वोच्च न्यायालय ने फटकार लगाते हुए आपराधिक मानहानि के मामले की कार्रवाई पर रोक लगा दी जिस में गांधी ने अपनी भारत जोड़ो यात्रा के दरम्यान सीमा पर भारतीय व चीनी सैनिकों के बीच झड़पों पर टिप्पणी की थी। अदालत ने सवाल किया आपको कैसे पता चला दो हजार किमी. भारतीय क्षेत्र पर कब्जा कर लिया गया है। कोर्ट ने पूछा कि क्या उनके पास सबूत है या आप वहां थे। अगर आप सच्चे भारतीय होते तो ये सब बातें नहीं करते। पीठ ने राहुल के सोशल मीडिया पर विचार व्यक्त करने पर भी प्रश्न चिह्न लगाया और संसद में अपनी बात रखने को कहा। गांधी का कहना है कि उनके भाषण संबंधी अपराधों के बीस से ज्यादा मामले चल रहे हैं, कई लोग उन्हें फंसाने की फिराक में हैं। गांधी के खिलाफ यह मामला अगस्त, 2023 में लखनऊ मजिस्ट्रेट अदालत के समक्ष की गई थी जिसमें इसी मई में उन्हें सम्मन जारी किया गया था। कांग्रेस नेता का कहना कि उनका उद्देश्य सेना की प्रतिष्ठा को ठेस पहुंचाना नहीं था बल्कि यह सरकारी नीतियों की आलोचना थी। इसे उचित कहा जा सकता है मगर जैसा कि अदालत ने कहा, सांसद होने के नाते गांधी को सरकार के कामकाज या नाकामियों पर जो भी सवाल उठाना है, उसे सदन में उठाने से क्यों हिचकते हैं। राहुल की तरफ से कहा गया कि उन्हें सुनवाई का अवसर दिए वगैर ही सम्मन जारी कर दिया गया जबकि यह सुनी-सुनाई बातों व अखबारी कतरनों पर आधारित था। यह कानूनन साबित होने तक साक्ष्य के तौर पर स्वीकार्य नहीं था। बेशक, गांधी के प्रति की गई यह शिकायत राजनीति प्रतिशोध का उदाहरण कहा जा सकता है। इससे न सिर्फ अदालतों का वक्त जाया होता है बल्कि सनसनी फैलाने का काम भी होता है। गांधी को जिम्मदार नेता का परिचय देते हुए अप्रमाणित आरोपों से बचना सीखना होगा। सवाल सेना या सुरक्षा बलों पर आक्षेप लगाने भर की नहीं है। वरिष्ठ नेता के तौर पर वेवुनियादी बातें करना राहुल को शोभा नहीं देता। यह कहना भी अतिश्योक्ति नहीं होगा कि इसी दरम्यान सात साल बाद सीबीआई अदालत ने आप नेता सत्येन्द्र जैन के खिलाफ एक मामले में कोई सबूत न होने की बात स्वीकारी है। यह न्यायिक व्यवस्था व सत्ताधारी दल की नीयत पर प्रश्न चिह्न लगाता है। राजनीतिक प्रतिशोधों या कीचड़ उछालने वाली राजनीति का यह निम्नतर उदाहरण न बन कर रह जाए, इसका विशेष ख्याल रखा जाना जरूरी है।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 06-08-25

बादल और आपदा

संपादकीय

उत्तराखंड के उत्तरकाशी में धराली गांव के ऊपर बादल फटने से मची तबाही का मंजर बेहद डरावना था। इस कुदरती हादसे में वास्तविक नुकसान तो खैर बचाव व राहत कार्यों के खत्म होने के बाद ही पता चल सकेगा, मगर जिस तरह चंद सेकंडों में दर्जनों पक्के मकान और होटल जमींदोज हो गए, उससे एक बार फिर यही पुष्ट हुआ है कि पुराने हादसों से हमने कुछ नहीं सीखा। इस विध्वंस के जो वीडियो फुटेज सामने आए हैं, वे साफ-साफ दिखा रहे हैं कि खीर गंगा नदी के बहाव क्षेत्र में बड़ी संख्या में कई कई मंजिल की इमारतें खड़ी हो चुकी हैं। बल्कि एक पूरा बाजार विकसित हो चुका है। अगर तंत्र ने वहां की भौगोलिक स्थिति को देखते हुए मानव बसाहट के विस्तार की योजना बनाई होती, तो इस तबाही से बचा जा सकता था। बहरहाल, संतोष की बात यह है कि जल्द ही सेना, एनडीआरएफ और एसडीआरएफ की टीमें घटनास्थल पर पहुंच गई और मलबे में दबे लोगों को बाहर निकालने का काम शुरू हो गया। एम्स ऋषिकेश को भी आपात स्थिति के लिए सचेत कर दिया गया, ताकि घायलों को तत्काल जरूरी उपचार मिल सके।

मानसून के समय पहाड़ी इलाकों में बादल फटने की घटनाएं होती रहती हैं, मगर इस सच्चाई से नहीं मुकरा जा सकता कि पिछले एक दशक में इनकी बारंबारता बढ़ी है। मौसम विज्ञानियों का मानना है कि हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड के स्थानीय जलचक्र में बदलाव इसकी बड़ी वजह है। पहले पहाड़ी इलाकों में इंसानी गतिविधियां कम होती थीं, मगर हाल के दशकों में विकास कार्यों के कारण बड़ी संख्या में पेड़ों की कटाई, वनों में आग लगने की अधिक घटनाओं और पर्यटन के अधिकाधिक दोहन के लिए अविवेकपूर्ण निर्माण कार्यों ने स्थानीय पारिस्थितिकी को बुरी तरह प्रभावित किया है। निस्संदेह, पहाड़ी इलाकों के बाशिंदों को आधुनिक सुख-सुविधाएं मिलनी चाहिए। सड़क, बिजली और अस्पताल जैसी बुनियादी सहूलियतों पर भी उनका अधिकार है। मगर उनके लिए सुविधाएं जुटाते समय इन इलाकों की नाजुक पर्यावरणीय स्थितियों को ध्यान में रखने की भी जरूरत है। विडंबना यह है कि हमारी विकास परियोजनाओं में स्थानीय लोगों की आवश्यकता से अधिक सैलानियों की सहूलियत रहने लगी है। इस पर नए सिरे से गौर करने की जरूरत है।

उत्तरकाशी की इस घटना ने जून 2013 के केदारनाथ हादसे की यादें ताजा कर दी हैं, जिसमें पांच हजार से अधिक श्रद्धालु और स्थानीय लोग असमय काल के गाल में समा गए थे। उस हादसे में भी गांव के गांव बह गए थे और तब काफी जोर शोर से यह मांग उठी थी कि संवेदनशील पहाड़ी इलाकों में मानव बसाहट व निर्माण कार्य को लेकर नए सिरे से नीति-निर्धारण किया जाए। धराली बाजार की तबाही बता रही है कि इस दिशा में कितनी संजीदगी से काम हुआ है! यह स्थिति सिर्फ पहाड़ी इलाकों की नहीं है, प्रयागराज और बनारस में घरों में पानी घुसने की तस्वीरें भी अखबारों में रोज साया हो रही हैं। जल विशेषज्ञों की मानें, तो पहले ढाई दिनों में बाढ़ का पानी इसलिए उतर जाता था, क्योंकि उनकी निकासी के मार्ग अवरुद्ध नहीं होते थे। अब उन रास्तों पर कंक्रीट के जंगल उग आए हैं। ऐसा नहीं है कि विकसित देशों को कुदरत बख्श देती है या वहां बाढ़ से लोग नहीं

मरते, पर उनकी नीतियां मानव क्षति को न्यूनतम करने के दर्शन से प्रेरित होती हैं। धराली की घटना कह रही है कि हमें आत्मघाती उदासीनता से अब उबर जाना चाहिए, वरना हम नुकसान उठाते रहेंगे।

Date: 06-08-25

उत्तरकाशी में तबाही के लिए बरसात को दोष मत दीजिए

पंकज चतुर्वेदी, (वरिष्ठ पत्रकार)

मंगलवार, 5 अगस्त का दिन उत्तरकाशी में तबाही लेकर आया। गंगोत्री धाम के प्रमुख पड़ाव धराली में खीर गंगा में बादल फटने से विनाशकारी बाढ़ आई। बाढ़ के चलते न जाने कितने होटल और घर तबाह हो गए हैं, जिसके वीडियो काफी भयावह हैं। खीर गंगा के जल ग्रहण क्षेत्र में ऊपर कहीं बादल फटा, जिसके कारण यह बाढ़ आई।

क्या इसका दोष बादल, बरसात या बाढ़ को दिया जाए ? या यह भी देखा जाए कि पहाड़ी नदी से सटाकर निर्माण क्यों किए गए या फिर जब सरकारी रिपोर्ट चेता रही थी कि उत्तराखंड के पहाड़ों पर भूस्खलन का दायरा बढ़ता जा रहा है, तब संवेदनशील इलाकों में निर्माण के लिए पहाड़ों को गिराना क्या जरूरी है? मानसून है, तो दुनिया के सबसे जिंदा पहाड़ पर यह सब तो होना ही था।

इसी तरह, प्यास और पानी के लिए पलायन के कारण कुख्यात बुंदेलखंड में महाराज छत्रसाल द्वारा स्थापित छतरपुर शहर के सबसे बड़े तालाब किशोर सागर पर अवैध कब्जा कर कालोनी बसा लेने का विवाद आया। राष्ट्रीय हरित अधिकरण (एनजीटी) ने 7 अगस्त, 2014 को किशोर सागर तालाब के मूल रकवा भराव क्षेत्र और 10 मीटर के ग्रीन जोन को कब्जा मुक्त करने का आदेश दिया। सवाल अटक गया कि भराव क्षेत्र का निर्धारण कैसे हो ? इस साल सावन में इतना पानी बरसा कि किशोर सागर के भीतर बसे मकानों में दस फुट तक पानी भर गया। एक झटके में तालाब ने बता दिया कि उसका अपना दायरा कहां तक है। अब भले ही समाज और मीडिया इसे बाद कहे, किशोर सागर ने नैसर्गिक तरीके से अपना घर पता दर्ज करवा दिया। सारे देश के हर गांव- कस्बे में छोटी नदियां हों, या पारंपरिक तालाब या फिर जोहड़, उन पर कब्जे हुए और अदालती लड़ाई में यह साबित करना टेढ़ी खीर हो गया कि अमुक जल-निधिका फैलाव कहां तक है? मानसून में इसका स्वाभाविक तरीका खुद-ब-खुद सामने दिख जाता है, बशर्ते उसे मापने आंकने और दर्ज करने की इच्छाशक्ति हो।

नैसर्गिक बाद विनाशकारी नहीं होती और उसके कुछ सकारात्मक पहलू भी होते हैं। बाढ़ के विकराल होने के पीछे नदियों का उथला होना, जलवायु परिवर्तन, बढ़ती गरमी, रेत की खुदाई, शहरी प्लास्टिक, खुदाई मलबे का नदी में भरना, जमीन का कटाव जैसे कई कारण दिनोंदिन गंभीर होते जा रहे हैं। जब नदी का पानी फैलता है, तो उससे आसपास के भूजल स्रोतों का पुनर्भरण होता जाता है। भूजल स्तर में सुधार से न केवल पानी का भंडार

होता है, बल्कि यह धरती की सेहत के लिए भी अनिवार्य है। असम का बड़ा हिस्सा हो या पश्चिमी उत्तर प्रदेश का उपजाऊ दोआब, ये सभी बाढ़ से बहकर आई मिट्टी से ही बने हैं। बाढ़ यह भी याद दिलाती है कि नदी इंसान की तरह एक जीवंत संरचना है और उसकी याददाश्त है और उसके जिम्मे पृथ्वी को समयानुसार संरचित करना भी है। सबसे बड़ी बात, इंसान जो भी कचरा, मलबा चुपके नदी में डाल देता है, बाढ़ उसे साफ करती है और नदी के लिए गैरजरुरी तत्वों को छांटकर किनारे पटक देती है। बाढ़ के पानी से नदियों के प्रदूषक बहकर समुद्र या अन्य जल स्रोतों में चले जाते हैं, जिससे नदी की शुद्धता और स्वच्छता में सुधार होता है। राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण, यानी एनडीएमए के पूर्व सचिव नूर मोहम्मद का मानना है कि देश में समन्वित बाढ़ नियंत्रण व्यवस्था पर कभी ध्यान नहीं दिया गया।

पानी को स्थानीय स्तर पर रोकना, नदियों को उथला होने से बचाना, बड़े बांध पर पाबंदी, नदियों के करीबी पहाड़ों पर खुदाई पर रोक और नदियों के प्राकृतिक मार्ग से छेड़छाड़ को रोकना कुछ ऐसे सामान्य प्रयोग हैं, जो बाढ़ को प्रकोप बनने से बचा सकते हैं। बाढ़ को एक आपदा के रूप में देखने के बनिस्बत इसके दीर्घकालिक लाभों पर विचार करना होगा। बाढ़ न केवल नदियों और उनके आसपास के पारिस्थितिकी तंत्र को पुनर्जीवित करती है, बल्कि यह प्राकृतिक संसाधनों के वितरण में संतुलन बनाए रखने में भी मदद करती है। मानव सभ्यता को बाढ़ के साथ सह अस्तित्व की रणनीतियों को अपनाने और इसके फायदों को समझने की जरूरत है, ताकि प्राकृतिक आपदाओं के नकारात्मक प्रभावों को कम किया जा सके और इसके सकारात्मक पहलुओं का अधिकतम लाभ उठाया जा सके।